हुसैनआरा खातून और अन्य

बनाम

गृह सचिव, बिहार राज्य

(Hussainara Khatoon and Others

V.

Home Secretary, State of Bihar)

(12 फरवरी, 1979)

(न्यायाधिपति पी०एन० भगवती, आर० एस० पाठक और ए० डी० कौशल)

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)—धारा 436 और 437—विचारणाधीन कैदी के, लम्बी अवधि से विचारण के बिना ही, कारावास में बन्द होने पर तथा अन्य समुचित मामलों में अभियुक्त को वित्तीय बाध्यता के बिना ही स्वीय बन्धपत्र पर उन्मुक्त कर दिया जाना चाहिए।

संविधान, 1950—इस अनुच्छेद 21—अनुच्छेद के अनुपालन के लिए यह आवश्यक है कि विधि द्वारा स्थापित प्रक्रियाँ युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत होनी चाहिए और यदि विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया अभियुक्त व्यक्ति के शीघ्रता से विचारण को सुनिश्चित नहीं करती, तो उसे 'युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत' नहीं समझा जा सकता।

बिहार-राज्य में बहुत बड़ी संख्या में पुरुष, स्त्री और बच्चे दस वर्ष तक की विभिन्न कालावधियों से विचारणाधीन कैदियों के रूप में कारावास में बन्द थे और उनका विचारण अभी आरम्भ नहीं हुआ था। इसमें से कुछ पर ऐसे तुच्छ अपराधों का आरोप था, जिनके साबित होने पर भी उन्हें केवल कुछ महीनों या एक-दो वर्ष तक के कारावास का ही दण्ड दिया जा सकता था, किन्तु निर्धनता के कारण वे अपनी उन्मुक्ति के लिए जमानत देने में असमर्थ थे और इसलिए इतनी लम्बी कालावधियों से जेल में पड़े हुए थे। इस सम्बन्ध

1979(2) ellR(PAT) SC 16

में समाचारपत्रों में विवरण प्रकाशित होने पर प्रस्तुत पिटीशन फाइल किया गया था। इस पर उच्चतम न्यायालय ने 5 फरवरी, 1979 को कुछ व्यक्तियों को स्वीय बन्धपत्र पर उन्मोचित किए जाने का आदेश दिया था। उस आदेश के लिए कारण बताते हुए,

अभिनिर्धारित—(न्यायाधिपति पी०एन० भगवती और ए० डी० कौशल के मतानुसार) इस समय विद्यमान विधि के अधीन भी न्यायालयों को उस पुरानी संकल्पना को छोड़ देना चाहिए जिसके अधीन विचारण से पूर्व उन्मुक्ति का आदेश केवल प्रतिभुओं सहित ज़मानत दिए जाने पर ही जाता है। यह संकल्पना पुरानी हो गई है और अनुभव से यह दर्शित होता है कि इससे भलाई की अपेक्षा बुराई अधिक हुई है। अब विचारण से पूर्व उन्मुक्ति के सम्बन्ध में हमारे न्यायालयों के विनिश्चय विचारण से पूर्व उन्मुक्ति के विषय में नए दृष्टिकोण के अनुरूप होने चाहिएं जिनका सामाजिक रूप से विकसित देशों और विशेष रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका में विकास हुआ है। यदि न्यायालय का, उसके समक्ष प्रस्तुत की गई जानकारी के आधार पर, यह समाधान हो जाए कि अभियुक्त का समुदाय में भद्र स्थान है और उसके फरार होने की संभाव्यता नहीं है, तो वह अभियुक्त को आसानी से उसके स्वीय बन्धपत्र पर छोड़ सकता है। यह अवधारित करने के लिए कि अभियुक्त का समुदाय में दृढ़ स्थान है या नहीं, जो उसे भागने से रोकेगा, न्यायालय को अभियुक्त के सम्बन्ध में इन बातों का ध्यान रखना चाहिए : समुदाय में उसके निवास की अवधि, उसके नियोजन की हैसियत, इतिहास और उसकी वित्तीय स्थिति, उसके पारिवारिक बन्धन और नातेदारियां, उसकी ख्याति, चरित्र और आर्थिक स्थिति; उसके पूर्ववर्ती दाण्डिक अभिलेख जिसमें मुचलके या ज़मानत पर उसकी पहले उन्मुक्ति का अभिलेख सम्मिलित है; समुदाय के ऐसे उत्तरदायित्वपूर्ण सदस्यों से परिचय जो उसकी विश्वसनीयता को प्रमाणित करते हैं, आरोपित अपराध की प्रकृति और दोषसिद्धि की प्रकट सम्भाव्यता और सम्भावित दण्ड, उस हद तक जिस हद तक ये बातें अनुपस्थिति के जोखिम से सुसंगत हैं; और कोई अन्य बात जिससे समुदाय के साथ अभियुक्त के सम्बन्ध उपदर्शित होते हैं या जिसका उपस्थित होने में जानबूझकर किए गए व्यतिक्रम की जोखिम पर प्रभाव पड़ता है। यदि सुसंगत बातों पर विचार करने के पश्चात् न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि समुदाय के साथ अभियुक्त के सम्बन्ध हैं और अनुपस्थित की कोई सारवान जोखिम नहीं है, तो

अभियुक्त को यथासम्भव उसके स्वीय बन्धपत्र पर छोड़ा जा सकता है। निस्सन्देह, यदि न्यायालयों को ऐसे तथ्यों की जानकारी दी जाती है जिनसे यह दर्शित होता है कि अभियुक्त की अवस्था और पृष्ठभूमि, उसके पूर्ववर्ती अभिलेख और अपराध की प्रकृति और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए विचारण के समय उसकी अनुपस्थिति की सारवान जोखिम हो सकती है, उदाहरण के लिए, यदि अभियुक्त कुख्यात दुराचारी है या पुराना अपराधी है या अपराध गम्भीर है (ये उदाहरण केवल दृष्टान्तों के रूप में हैं), तो न्यायालय अभियुक्त को उसके स्वीय बन्धपत्र पर उन्मुक्त न करे और प्रतिभुओं सहित ज़मानत का आग्रह करे। किन्तु अधिकतर मामलों में पारिवारिक बन्धन और नातेदारी, समुदाय में दृढ़ स्थान, नियोजन की हैसियत आदि विचार न्यायालय को अभियुक्त को उसके स्वीय बन्धपत्र पर उन्मोचित करने के लिए और विशेष रूप से ऐसे मामलों में अधिभावी हो सकते हैं जिनमें अपराध गम्भीर नहीं है और अभियुक्त निर्धन है या समुदाय के कमज़ोर वर्ग का है, स्वीय बन्धपत्र को, यथासम्भव, अधिमानता दी जाए। किन्तु अभियुक्त को स्वीय बन्धपत्र पर उन्मोचित करते समय भी न्यायालय के लिए यह पूर्वावधानी आवश्यक है कि उसके द्वारा नियत की गई बन्धपत्र की रकम केवल आरोप की प्रकृति पर आधारित नहीं होनी चाहिए। बन्धपत्र की रकम के सम्बन्ध में विनिश्चय अभियुक्त की वित्तीय स्थिति और उसके फरार होने की सम्भाव्यता पर आधारित व्यष्टिपरक विनिश्चय होना चाहिए। बन्धपत्र की रकम का अवधारण इन सुसंगत बातों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए और उसे आरोप की प्रकृति की अनुसूची के अनुसार यन्त्रवत् नियत नहीं किया जाना चाहिए। अन्यथा अभियुक्त के लिए स्वीय बन्धपत्र निष्पादित करके भी उन्मुक्ति प्राप्त करना कठिन हो जाएगा। (पैरा 4)

अनुच्छेद 21 प्रत्येक व्यक्ति को यह मूल अधिकार प्रदान करता है कि उसे उसके प्राण और दैहिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य प्रकार से वंचित नहीं किया जाएगा और उस अनुच्छेद की अपेक्षा के अनुपालन के लिए यही पर्याप्त नहीं है कि विधि द्वारा प्रक्रिया जैसी कोई बात विहित की जानी चाहिए, बल्कि प्रक्रिया युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत होनी चाहिए। यदि किसी व्यक्ति को ऐसी प्रक्रिया के अधीन उसकी स्वाधीनता से वंचित किया जाता है जो युक्तियुक्त, उचित या न्यायसंगत नहीं है, तो ऐसा वंचन अनुच्छेद 21 के अधीन उसके मूल अधिकार

1979(2) eILR(PAT) SC 16

का अतिक्रमण करने वाला होगा और वह ऐसे मूल अधिकार को प्रवृत्त करने और अपनी उन्मुक्ति प्राप्त करने का हकदार होगा। स्पष्ट रूप से किसी व्यक्ति को उसकी स्वाधीनता से वंचित करने के लिए विधि द्वारा विहित प्रक्रिया तब तक युक्तियुक्त, उचित या न्यायसंगत नहीं हो सकती जब तक कि उस प्रक्रिया में ऐसे व्यक्ति के अपराध के अवधारण के लिए शीघ्रता से विचारण सुनिश्चित न हो। ऐसी प्रक्रिया को, जिसमें युक्तियुक्त शीघ्रता से विचारण सुनिश्चित नहीं किया गया है, युक्तियुक्त, उचित या न्यायसंगत नहीं समझा जा सकता और वह अनुच्छेद 21 के विरुद्ध होगी। इसलिए, इस बात में कोई सन्देह नहीं हो सकता कि शीघ्रता से विचारण, और शीघ्रता से विचारण से हमारा अभिप्राय युक्तियुक्त रूप से तत्पर विचारण है, अनुच्छेद 21 में विद्यमान प्राण और स्वाधीनता के मूल अधिकार का अभिन्न और आवश्यक अंग है। (पैरा 5)

न्यायाधिपति आर० एस० पाठक के मतानुसार—यह निर्विवाद है कि विचारण किए जाने से पूर्व विचारणाधीन लोगों का कारावास में अनावश्यक रूप से लम्बी कालावधि के लिए अवरोध मानवीय स्वाधीनता के सभी सभ्य विचारों के प्रतिकूल है। व्यक्तिगत स्वाधीनता की अर्थपूर्ण संकल्पना के अनुसार, जो सभ्य विधिक व्यवस्था का मूल आधार है, विचारण की प्रतीक्षा कर रहे व्यक्तियों की ओर न्याय प्रशासन का ध्यान जाने से पूर्व कारावास की लम्बी कालावधि स्पष्ट रूप से दुख की बात समझी जाएगी। (पैरा 7)

दण्ड प्रक्रिया संहिता में ऐसा स्पष्ट उपबन्ध नहीं है जो समुचित मामलों में विचारणाधीन कैदी को प्रतिभुओं के बिना और किसी वित्तीय बाध्यता के बिना उसके बन्धपत्र के आधार पर उन्मुक्त करने में समर्थ बनाता हो। स्पष्ट उपबन्ध की अत्यन्त आवश्यकता है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि भारतीय कारावासों में इस समय जो विचारणाधीन हजारों कैदी है, उनमें से अनेक ऐसे हैं जो विचारण से पूर्व अपनी उन्मुक्ति प्राप्त करने में इसलिए असमर्थ हैं कि वे अपनी उपस्थिति के लिए पर्याप्त वित्तीय गारण्टी पेश नहीं कर सकते। जहां उनको कारावास में जारी रखने के लिए एकमात्र कारण यही है, वहां द्वेषजनक भेदभाव का परिवाद करने का उचित आधार हो सकता है। (पैरा 11)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[1979] [1979] 3 उम०नि० प० 278=
[1978] 4 एस० सी० सी० 47 :
मोतीराम और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य
(Moti Ram and Others *V.* State of
Madhya Pradesh). 8

[1979] [1979] 1 उम० नि० प० 243=
[1978] 2 एस० सी० आर० 621 :
मेनका गांधी बनाम भारत संघ
(Maneka Gandhi *V.* Union of India) 2,5

आरम्भिक अधिकारिता : 1979 का रिट पिटीशन संख्या 57.

पिटीशनरों की ओर से श्रीमती के० हिंगोरानी
प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री एस० एम० झा और यू०पी० सिंह

अभिलेख-अधिवक्ता

पिटीशनरों की ओर से श्रीमती के० हिंगोरानी
प्रत्यर्थी की ओर से श्री यू० पी० सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति पी० एन० भगवती ने दिया।

न्यायाधिपति भगवती—

बन्दी प्रत्यक्षीकरण (हेबियस कार्पस) के रिट के लिए इस पिटीशन से बिहार राज्य में न्याय प्रशासन के सम्बन्ध में निंदनीय स्थिति प्रकट होती है। बहुत बड़ी संख्या में पुरुष और स्त्री, जिनमें बच्चे भी सम्मिलित हैं, अनेक वर्षों से न्यायालय द्वारा विचारण किए जाने की प्रतीक्षा में कारावास में पड़े हुए हैं। उनमें से कुछ पर तुच्छ अपराधों का आरोप है, जिनसे, साबित होने पर, कुछ महीनों या सम्भवतः एक या दो वर्ष से अधिक दण्ड अपेक्षित नहीं होगा, फिर भी ये दुर्भाग्यशाली अपेक्षित मानव तीन से दस वर्ष तक की काल-अवधियों से जेल में हैं और अपनी स्वतन्त्रता से वंचित है और उनका विचारण

1979(2) eILR(PAT) SC 16

प्रारम्भ भी नहीं हुआ है। यह ऐसी न्यायिक पद्धति के लिए बड़ं शर्म की बात है जो विचारण के बिना इतनी लम्बी कालावधियों के लिए पुरुषों और स्त्रियों के कारावास की अनुज्ञा देती है। हम बड़े जोर-शोर से मानव अधिकारों के संरक्षण और प्रवर्तन के बारे में बातें करते हैं। हम मूल स्वतन्त्रताओं के अनुरक्षण और संरक्षण के बारे में भाव-भीनी और पटुतापूर्ण बातें करते हैं। किन्तु क्या हम इन अनाम व्यक्तियों को मानवीय अधिकारों से वंचित नहीं कर रहे हैं जो वर्षों से उन अपराधों के लिए जेलों में सड़ रहे हैं जिनके विषय में सम्भवतः यह अन्तिम निष्कर्ष हो सकता है कि उन्होंने वे अपराध नहीं किए हैं ? क्या हम इन उपेक्षित और असहाय मानवों की मूल स्वतन्त्रताओं को भी नहीं छीन रहे है जिन्हें वर्षों तक के लिए कारावास और अपमान के जीवन में धकेल दिया गया हैं ? क्या तत्पर विचारण और निरोध से स्वतन्त्रता मानव अधिकारों और मूल स्वतन्त्रताओं का अंग नहीं है ? इन दुर्भाग्यशाली पुरुषों और स्त्रियों में से अनेक को यह याद भी नहीं होगा कि वे जेल में कब और किस अपराध के लिए आए थे। वे वर्षों से मानवता से वंचित हैं---वे मात्र टिकट संख्या रह गए हैं। अब समय आ गया है कि जनसाधारण की अन्तरात्मा जागृत हो और सरकार तथा न्यायपालिका को यह अनुभव होने लगे कि हमारे कारावास की अंधियारी कोठरियों में बड़ी संख्या में ऐसे पुरुष और स्त्री हैं जो धैर्यपूर्वक या सम्भवतः अधीरता से, किन्तु निरर्थक रूप से, न्याय की प्रतीक्षा कर रहे है, जो उनकी पहुंच और पकड़ से पूर्णतया बाहर की वस्तु है। उनके लिए विधि अन्याय का साधन बन गई है और वे विधिक और न्याय पद्धति की क्रूरता के असहाय और निराश शिकार हैं। अब वह समय आ गया है जब विधिक और न्याय पद्धति का पुनर्निर्माण और पुनर्गठन करना होगा ताकि ऐसा अन्याय न हो और हमारे नवीन प्रजातन्त्र के स्वच्छ और अन्यथा दमकते हुए चेहरे को विकृत न करे।

2. यद्यपि हमने बिहार राज्य को दो सप्ताह पहले सूचना जारी की थी, तथापि बड़े दुर्भाग्य की बात है कि 5 फरवरी, 1979 को राज्य की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ है और इसलिए हमें इस प्रक्रम पर इस आधार पर अग्रसर होना होगा कि तारीख 8 और 9 जनवरी, 1979 वाले इण्डियन एक्सप्रेस के संस्करणों में विद्यमान अभिकथन, जो रिट पिटीशन में दिए गए हैं, सही हैं। समाचार पत्र की इन कतरनों में दी गई जानकारी बहुत दुखद है और यह समाजोन्मुख विधि व्यवसायी या न्यायाधीश की अन्तरात्मा को झझकोरने और उसके मन को विचलित करने के लिए पर्याप्त है। जिन

1979(2) eILR(PAT)SC 16

विचारणाधीन बंदियों के नाम समाचारपत्रों की कतरनों में दिए गए है, उनमें से कुछ 5, 7 या 9 वर्षों तक और उनमें से कुछ तो 10 वर्ष से भी अधिक की कालावधि से जेल में रह चुके हैं, और उनका विचारण आरम्भ नहीं हुआ है। इन भूली हुई आत्माओं का ऐसी न्याय व्यवस्था में क्या विश्वास हो सकता है जो उन्हें इतने वर्षों तक विचारण से वंचित रखकर कारावास में रखती है' इसलिए नहीं कि वे अपराधी है, बल्कि इसलिए कि वे इतने निर्धन हैं कि जमानत नहीं दे सकते और न्यायालयों के पास उनके विचारण का समय नहीं है। यह न्याय का उपहास है कि अनेक निर्धन अभियुक्त 'क्षुद्र भारतीय क्षुद्र अपराधों के लिए लम्बे समय तक काल कोठरियों में बन्द हैं, क्योंकि जमानत देना उनके तुच्छ साधनों से परे है और विचारण आरम्भ नहीं हुए है और यदि होते हैं, तो भी कभी पूरे नहीं होते। इस न्यायालय द्वारा **मेनका गांधी** बनाम **भारत संघ**[1] में किए गए अनुच्छेद 21 के गतिशील निर्वचन के पश्चात् इस बात में संदेह नहीं हो सकता कि जो प्रक्रिया इतनी बड़ी संख्या में लोगों को विचारण के बिना इतने लम्बे समय के लिए कारावास में रखती है, उसे युक्तियुक्त, न्यायसंगत या उचित नहीं समझा जा सकता जिससे कि वह उस अनुच्छेद की अपेक्षाओं के अनुरूप हो जाए। इसलिए यह आवश्यक है कि विधानमण्डल द्वारा अधिनियमित और न्यायालयों द्वारा लागू की जाने वाली विधि में विचारण से पूर्व निरोध के प्रति दृष्टिकोण में क्रान्तिकारी परिवर्तन होना चाहिए और उसके द्वारा युक्तियुक्त, न्यायसंगत और उचित प्रक्रिया सुनिश्चित होनी चाहिए जिसका **मेनका गांधी**[1] वाले मामले के पश्चात् सर्जनात्मक अर्थ है।

3. हमारी विधि और न्यायव्यवस्था द्वारा निर्धन व्यक्तियों को अनेक वर्षों तक विचारण से पूर्व निरोध में रखकर निरन्तर न्याय से वंचित किए जाने का एक कारण हमारी बहुत ही असंतोषजनक जमानत-पद्धति है। इसमें सम्पत्ति की ओर उन्मुख दृष्टिकोण का दोष है जो इस गलत उपधारणा पर अग्रसर प्रतीत होता है कि न्याय से बचकर भागने के विरुद्ध एकमात्र अवरोध धन सम्बन्धी हानि है। दण्ड प्रक्रिया संहिता में, उसके पुनः अधिनियम न के पश्चात् भी, वही पुरातन दृष्टिकोण अपनाया जा रहा है जो पूर्ववर्ती संहिता में पिछली शताब्दी के अंतिम भाग में अपनाया गया था और जहां अभियुक्त को उसके स्वीय बंधपत्र पर उन्मोचित किया जाना होता है, वहां भी इसमें

[1] [1959] 1 उम० नि० प० 243=(1978) 2 एस० सी० आर० 621.

1979(2) eILR(PAT) SC 16

इस बात पर जोर दिया गया है कि बंधपत्र में धन विषयक बाध्यता होनी चाहिए जिसमें अभियुक्त से उस दशा में कुछ धनराशि का संदाय करने की अपेक्षा होनी चाहिए जब वह विचारण के समय उपस्थित न हो। इसके अतिरिक्त, मानो कि यह निर्धन व्यक्तियों के लिए पर्याप्त अवरोधक नहीं था, न्यायालय यंत्रवत् और सामान्य प्रक्रिया के रूप में इस बात पर जोर देते हैं कि अभियुक्त को ऐसे प्रतिभूत पेश करने चाहिएं जो उसके लिए जमानत दे सकें और इन प्रतिभुओं को भी अभियुक्त के आरोप का उत्तर देने के लिए उपस्थित होने में असफल होने की दशा में जमानत की रकम का संदाय कर सकने की अपनी शोध्य क्षमता सिद्ध करनी पड़ती है। जमानत की यह पद्धति निर्धन लोगों के लिए बड़ी कठोर है और केवल धनी लोग ही अपने को जमानत पर छुड़वाकर इसका फायदा उठा सकते हैं। निर्धन लोग प्रतिभुओं के बिना भी जमानत देने में कठिनाई अनुभव करते हैं, क्योंकि न्यायालयों द्वारा नियत जमानत की रकम प्रायः इतनी अधिक होती है कि अधिकतर मामलों में निर्धन लोग पुलिस या मजिस्ट्रेट को जमानत की रकम के लिए अपनी शोध्य क्षमता के प्रति संतुष्ट करने में असमर्थ होते है और यदि जमानत प्रतिभुओं सहित है, जैसा कि सामान्यतया होता है, तो निर्धन लोगों के लिए पर्याप्त संख्या में शोध्यक्षम व्यक्ति प्रतिभू बनाने के लिए जुटा पाना लगभग असम्भव होता है। परिणाम यह है कि या तो उनका पुलिस और राजस्व अधिकारियों द्वारा या दलालों और वृत्तिक प्रतिभुओं द्वारा शोषण किया जाता है और कभी-कभी उन्हें अपने को छुड़ाने के लिए ऋण भी लेना पड़ता है या अपने को छुड़ाने में असमर्थ होने पर उन्हें तब तक जेल में रहना पड़ता है जब तक कि न्यायालय उनके मामलों का विचारण आरम्भ न कर दे जिसके गम्भीर परिणाम होते हैं, अर्थात् (1) उनके निर्दोष होने की उपधारणा होने पर भी उन्हें जेल के जीवन का मानसिक और शारीरिक एकाकीपन सहन करना पड़ता है, (2) उन्हें अपना प्रतिवाद तैयार करने में योगदान देने से रोका जाता है और (3) वे अपने काम धंधे से, यदि कोई है तो, वंचित हो जाते है और अपना और अपने परिवार के सदस्यों का पालन-पोषण करने के लिए काम करने के अवसर से वंचित हो जाते है, जिसका परिणाम यह होता है कि उनके निरोध का भार प्रायः सदैव परिवार के निर्दोष सदस्यों के लिए भारी पड़ता है। इसी कारण निर्धन लोगों को हमारी विधि और न्याय व्यवस्था दमनकारी और उनके बहुत अधिक विरुद्ध प्रतीत होती है और उनमें विवशता और निराशा की भावना भर जाती है, क्योंकि उन्हें लगता है कि उनकी स्थिति धनी लोगों से बहुत अधिक असमान है। हममें से एक,

न्यायाधिपति भगवती की अध्यक्षता में गुजरात सरकार द्वारा नियुक्त विधिक सहायता समिति ने इस स्पष्टतः गम्भीर असमानता पर निम्नलिखित शब्दों में जोर दिया है—

> "जमानत पद्धति, जो आजकल दाण्डिक न्यायालयों में अपनाई जाती है, अत्यन्त असंतोषजनक है और इसमें क्रान्तिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है। पहली बात तो यह है कि अभियुक्त की अनुपस्थिति के जोखिम को सही-सही धन की मात्रा में परिवर्तित करना वास्तव में असम्भव है और इसकी इस मूल प्रतिपादना की विद्यमानता भी संदेहपूर्ण है कि अभियुक्त को भागने से रोकने के लिए वित्तीय हानि की जोखिम आवश्यक है। अनेक ऐसी बातें हैं जो अभियुक्त को न्याय से भागने से रोकती हैं और वित्तीय हानि की जोखिम उनमें से एक है और वह भी प्रमुख नहीं है। संयुक्त राज्य अमरीका में सजग जमानत परियोजनाओं, जैसे मैनहट्टन जमानत परियोजना, डी० सी० जमानत परियोजना, का प्रयोग यह दर्शित करता है कि धन विषयक जमानत के बिना भी बड़ी संख्या में मामलों में विचारण के समय अभियुक्त की उपस्थिति को सुनिश्चित करना सम्भव हुआ है। इसके अतिरिक्त, जमानत पद्धति निर्धन लोगों के विरुद्ध विभेद करती है, क्योंकि निर्धन लोग अपनी निर्धनता के कारण जमानत नहीं दे सकते, जबकि धनी लोग अन्यथा समान स्थिति में होने पर, अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने में समर्थ हो जाते हैं, क्योंकि वे जमानत दे सकते हैं। यह विभेद तब भी उत्पन्न होता है जब मजिस्ट्रेट द्वारा नियत की गई जमानत की रकम अधिक नहीं भी होती है, क्योंकि वे लोग जिन्हें दाण्डिक मामलों में न्यायालयों के समक्ष लाया जाता है, बड़ी संख्या में इतने निर्धन होते हैं कि उनके लिए छोटी रकम की जमानत देना भी कठिन होता है।"

गुजरात वाली समिति ने यह भी बताया है कि किसी प्रकार जमानत की रकम सुसंगत बातों, जैसे अभियुक्त की व्यक्तिगत वित्तीय परिस्थिति और विचारण से पूर्व उसके भागने की सम्भाव्यता को ध्यान में रखे बिना आरोप की प्रकृति के प्रति निर्देश से नियत करना कठोर और दमनकारी है और वह निर्धन लोगों के विरुद्ध विभेदकारी होता है—

> "जमानत पद्धति की विभेदकारी प्रकृति उस यंत्रवत् ढंग के कारण और भी अधिक तीव्र हो जाती है जिससे उसे सामान्यतः

1979(2) eILR(PAT) SC 16

प्रवर्तित किया जाता है। निस्संदेह यह सही है कि सैद्धान्तिक रूप से मजिस्ट्रेट को जमानत की रकम नियत करने का व्यापक विवेकाधिकार है, किन्तु व्यावहारिक रूप से ऐसा प्रतीत होता है कि जमानत की रकम प्रायः सदैव अपराध की गम्भीरता पर आधारित होती है। यह, आरोप की प्रकृति से सम्बन्धित अनुसूची के अनुसार नियत की जाती है। इस सम्भाव्यता को कि अभियुक्त अपने विचारण से पूर्व भागने का प्रयास करेगा, या उसकी व्यक्तिगत वित्तीय परिस्थितियों को जो उस दशा में सर्वाधिक सुसंगत बातें प्रतीत होती हैं जब जमानत का प्रयोजन विचारण के समय अभियुक्त की उपस्थिति को सुनिश्चित करना होता है, महत्त्व नहीं दिया जाता। इन बातों की अवहेलना करने और केवल अपराध की गम्भीरता का ध्यान रखते हुए जमानत की रकम यंत्रवत् नियत करने का परिणाम निर्धन लोगों के विरुद्ध विभेद होता है जो जमानत देने की हैसियत के सम्बन्ध में उस स्थिति में नहीं होते जिसमें धनी लोग होते हैं। धनी और निर्धन की जमानत देने की भिन्न हैसियत की अवहेलना करके और उनसे समान व्यवहार करके न्यायालय धनी और निर्धन के बीच असमानता पैदा करते हैं। धनी व्यक्ति, जिस पर उन्हीं परिस्थितियों में उसी अपराध का आरोप होता है, अपने को छुड़वा लेता है जबकि निर्धन व्यक्ति अपनी निर्धनता के कारण ऐसा करने में असमर्थ होता है। आजकल अपनाई जाने वाली जमानत-पद्धति में ये कुछ प्रमुख त्रुटियां हैं।"

राष्ट्रपति लिण्डन बी० जॉन्सन ने भी 'बेल रिफार्म्स ऐक्ट, 1966' पर हस्ताक्षर करते समय यही दुःख प्रकट किया था—

"आज, हम अपनी दाण्डिक न्याय पद्धति में महत्वपूर्ण विकास को मान्यता दे रहे हैं, जो जमानत व्यवस्था का सुधार है। यह व्यवस्था ज्युडिशियरी ऐक्ट, 1789 से प्राचीन, अन्यायोचित और वस्तुतः अपरीक्षित बनी रही है।

जमानत का मुख्य प्रयोजन यह सुनिश्चित करना है कि यदि अभियुक्त व्यक्ति को गिरफ्तारी के पश्चात् छोड़ दिया जाएगा, तो वह विचारण के लिए वापस आ जाएगा।

वर्तमान व्यवस्था में यह प्रयोजन कैसे पूरा होता है? साधन-युक्त प्रतिवादी जमानत का संदाय कर सकता है। वह अपनी

स्वतन्त्रता खरीद सकता है, किन्तु निर्धन प्रतिवादी उसकी कीमत नहीं चुका सकता। वह विचारण से पूर्व सप्ताहों, महीनों और सम्भवतः वर्षों तक जेल में सड़ता रहता है।

वह जेल में इसलिए नहीं रहता कि वह अपराधी है।

वह जेल में इसलिए नहीं रहता कि उस पर कोई दण्ड अधिरोपित कर दया गया है।

वह जेल में इसलिए नहीं रहता कि विचारण से पूर्व उसके भाग जाने की अधिक सम्भाव्यता है।

वह केवल इस कारण जेल में रहता है कि वह निर्धन है....."

आजकल प्रचलित ज़मानत-व्यवस्था निर्धन लोगों के लिए भारी कठिनाई का कारण बन गई है और यदि हम वास्तव में निर्धनता के दुष्प्रभाव को समाप्त करना और न्याय प्रशासन में निर्धन लोगों के लिए उचित और न्यायोचित व्यवहार सुनिश्चित करना चाहते हैं, तो यह अनिवार्य है कि ज़मानत व्यवस्था में आमूल सुधार किया जाए जिससे निर्धन लोगों के लिए न्याय के हित को हानि पहुंचाए बिना विचारण से पूर्व उन्मुक्ति उतनी ही आसानी से प्राप्त करना सम्भव हो जाए जितनी आसानी से धनी लोग करते हैं।

4. हमारी संसद् के लिए यह अनुभव करने का अब समय आ गया है कि न्याय से भागने के विरुद्ध एकमात्र अवरोध पैसे की हानि का जोखिम नहीं है, अपितु कुछ अन्य बातें भी हैं जो भागने के विरुद्ध समान अवरोधों का कार्य करती है। हमारा देश समाजवादी गणतन्त्र है जिसमें हमारे संविधान का प्रमुख लक्ष्य सामाजिक न्याय है और संसद् के लिए यह विचार करना उचित होगा कि क्या यह हमारे संविधान की विशेषता के अधिक अनुरूप नहीं होगा कि वित्तीय हानि की जोखिम के बजाय अन्य सुसंगत बातें, जैसे पारिवारिक सम्बन्ध, समुदाय में स्थान, कार्य की सुरक्षा, स्थायी संगठनों की सदस्यता आदि, ज़मानत मंजूर करने में निर्णायक बातें होनी चाहिए और समुचित मामलों में अभियुक्त को वित्तीय दायित्व के बिना उसके स्वीय बन्धपत्र पर छोड़ दिया जाना चाहिए। निस्सन्देह ऐसे मामले में दाण्डिक विधि में संशोधन करके यह उपबन्ध करना आवश्यक हो सकता है कि यदि अभियुक्त जानबूझकर स्वीय बन्धपत्र में दिए गए वचन का अनुपालन करके उपस्थित होने में असफल रहता है, तो वह दाण्डिक कार्यवाही के दायित्वाधीन होगा। किन्तु इस विद्यमान विधि के अधीन भी न्यायालयों को

उस पुरानी संकल्पना को छोड़ देना चाहिए जिसके अधीन विचारण से पूर्व उन्मुक्ति का आदेश केवल प्रतिभुओं सहित ज़मानत दिए जाने पर ही दिया जाता है। यह संकल्पना पुरानी हो गई है और अनुभव से यह दर्शित होता है कि इससे भलाई की अपेक्षा बुराई अधिक हुई है। अब विचारण से पूर्व उन्मुक्ति के सम्बन्ध में हमारे न्यायालयों के विनिश्चय विचारण से पूर्व उन्मुक्ति के विषय में नये दृष्टिकोण के अनुरूप होने चाहिएं जिनका सामाजिक रूप से विकसित देशों और विशेष रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका में विकास हुआ है। यदि न्यायालय का, उसके समक्ष प्रस्तुत की गई जानकारी के आधार पर, यह समाधान हो जाए कि अभियुक्त का समुदाय में दृढ़ स्थान है और उसके फरार होने की सम्भाव्यता नहीं है, तो वह अभियुक्त को आसानी से उसके स्वीय बन्ध-पत्र पर छोड़ सकता है। यह अवधारित करने के लिए अभियुक्त का समुदाय में दृढ़ स्थान है या नहीं, जो उसे भागने से रोकेगा, न्यायालय को अभियुक्त के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए—

1. समुदाय में उसके निवास की अवधि,

2. उसके नियोजन की हैसियत, इतिवृत्त और उसकी वित्तीय स्थिति,

3. उसके पारिवारिक बन्धन और नातेदारियां,

4. उसकी ख्याति, चरित्र और आर्थिक स्थिति,

5. उसके पूर्ववर्ती दाण्डिक अभिलेख जिनमें मुचकले या ज़मानत पर उसकी पहले उन्मुक्ति का अभिलेख सम्मिलित है,

6. समुदाय के ऐसे उत्तरदायित्वपूर्ण सदस्यों से परिचय जो उसकी विश्वसनीयता को प्रमाणित करते हैं,

7. आरोपित अपराध की प्रकृति और दोषसिद्धि की प्रकट सम्भाव्यता और सम्भावित दण्ड, उस हद तक जिस हद तक ये बातें अनुपस्थिति के जोखिम से सुसंगत हैं, और

8. कोई अन्य बात जिससे समुदाय के साथ अभियुक्त के सम्बन्ध उपदर्शित होते हैं या उपस्थित होने में जानबूझकर किए गए व्यतिक्रम के जोखिम पर जिसका प्रभाव पड़ता है।

यदि सुसंगत बातों पर विचार करने के पश्चात् न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि अभियुक्त के सम्बन्ध समुदाय के साथ हैं और अनुपस्थिति

का कोई सारवान् जोखिम नहीं है, तो अभियुक्त को यथासम्भव उसके स्वीय बन्धपत्र पर छोड़ा जा सकता है। निस्सन्देह, यदि न्यायालयों को ऐसे तथ्यों की जानकारी दी जाती है जिनसे यह दर्शित होता है कि अभियुक्त की अवस्था और पृष्ठभूमि, उसके पूर्ववर्ती अभिलेख और अपराध की प्रकृति और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए विचारण के समय उसकी अनुपस्थिति का सारवान् जोखिम हो सकता है, उदाहरण के लिए, यदि अभियुक्त कुख्यात दुराचारी है या पक्का अपराधी है या अपराध गम्भीर है (ये उदाहरण केवल दृष्टान्तों के रूप में हैं), तो न्यायालय अभियुक्त को उसके स्वीय बन्धपत्र पर उन्मुक्त न करे और प्रतिभुओं सहित जमानत का आग्रह करे। किन्तु अधिकतर मामलों में पारिवारिक बन्धन और नातेदारी, समुदाय में भद्र स्थान, नियोजन की हैसियत आदि विचार न्यायालय को अभियुक्त को उसके स्वीय बन्धपत्र पर उन्मोचित करने के लिए और विशेष रूप से ऐसे मामलों में अभिभावी हो सकते हैं जिनमें अपराध गम्भीर नहीं है और अभियुक्त निर्धन है या समुदाय के कमजोर वर्ग का है, स्वीय बन्ध पत्र को, यथासम्भव, अधिमानता दी जा सकती है। किन्तु अभियुक्त को स्वीय बन्धपत्र पर उन्मोचित करते समय भी न्यायालय के लिए यह पूर्वावधानी आवश्यक है कि उसके द्वारा नियत की गई बन्धपत्र की रकम केवल आरोप की प्रकृति पर आधारित नहीं होनी चाहिए। बन्धपत्र की रकम के सम्बन्ध में विनिश्चय अभियुक्त की वित्तीय स्थिति और उसके फरार होने की सम्भाव्यता पर आधारित व्यष्टि-परक विनिश्चय होना चाहिए। बन्धनपत्र की रकम का अवधारण इन सुसंगत बातों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए और उसे आरोप की प्रकृति की अनुसूची के अनुसार यन्त्रवत् नियत नहीं किया जाना चाहिए। अन्यथा अभियुक्त के लिए स्वीय बन्धपत्र निष्पादित करके भी उन्मुक्ति प्राप्त करना कठिन हो जाएगा। इसके अतिरिक्त जब अभियुक्त को स्वीय बन्धपत्र पर उन्मोचित किया जाता है, तो उस दशा में यह बात बहुत कठोर और दमनकारी होगी जब उससे न्यायालय का यह समाधान कराने की अपेक्षा की जाती है—और हमने जो कुछ न्यायालय के सम्बन्ध में कहा है, वह जमानत मंजूर करते समय पुलिस के सम्बन्ध में भी समान रूप से लागू होगा—कि वह उस दशा में बन्धपत्र की रकम का संदाय करने के लिए पर्याप्त रूप से शोधनक्षम है जब वह विचारण के समय उपस्थित होने में असफल रहता है और उसके परिणामस्वरूप बन्धपत्र का समपहरण कर लिया जाता है। अभियुक्त की शोधनक्षमता के विषय में जांच उसके लिये भारी दिक्कत का साधन बन सकती है और प्रायः उसके परिणाम जमानत

1979(2) eILR(PAT) SC 16

से इनकार और स्वतन्त्रता से वंचित किया जाना हो सकता है और इसलिए स्वीय बन्धपत्र की स्वीकृति की शर्त के रूप में इसका आग्रह नहीं किया जाना चाहिये। हमें इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि यदि विद्यमान विधि के अधीन भी जमानत की व्यवस्था को उस रीति से लागू किया जाता है जो हमने इस निर्णय में उपदर्शित की है तो इससे निर्धन लोगों की कठिनाई दूर करने में बहुत सहायता मिलेगी और इससे उनको विचारण से पूर्व के कारावास से उन्मुक्ति प्राप्त करने में सहायता मिलेगी। इसी कारण से हमने निदेश दिया है कि उन विचारणाधीन कैदियों को, जिनके नाम इण्डियन एक्सप्रैस के दो संस्करणों में दिए गए हैं, उनके वैयक्तिक बन्धपत्र पर तत्काल उन्मोचित कर दिया जाए। सामान्यतः हम यही कहते कि उनके द्वारा निष्पादित किए जाने वाले स्वीय बन्धपत्र वित्तीय बाध्यता सहित होने चाहिएं, किन्तु हमने असाधारण उपाय के रूप में यह निदेश दिया है कि स्वीय बन्धपत्र पर कोई वित्तीय बाध्यता होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि हमें पता चला है कि ये सभी व्यक्ति अनेक वर्षों से विचारण के बिना जेल में रहे हैं और कुछ मामलों में ऐसे अपराधों के लिए जेल में रहे हैं जिनके लिए सभी सम्भाव्यताओं में दण्ड उनके अवरोध की अवधि से कम होगा और इसके अतिरिक्त हमारे द्वारा किया जाने वाला आदेश केवल अन्तरिम आदेश था। मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों के कारण ऐसी असामान्य कार्यवाही करनी पड़ी।

5. विधिक और न्यायिक व्यवस्था में एक और त्रुटि भी है जो विचारणाधीन कैदियों को न्याय के इस स्पष्ट इनकार के लिए उत्तरदायी है और वह मामलों के निपटारे में कुख्यात विलम्ब है। यह विधिक और न्यायिक व्यवस्था के लिए बहुत लज्जा की बात है कि अभियुक्त का विचारण अनेक वर्षों तक आरम्भ ही नहीं होता। विचारण आरम्भ करने में एक वर्ष का विलम्ब भी बहुत बुरा है जब विलम्ब 3, 5, 7 या 10 वर्ष तक की लम्बी अवधि का होता है, तो इससे अधिक वह बुरा और क्या हो सकता है। दाण्डिक न्याय का सार शीघ्रता से विचारण करना है और इस बात में सन्देह नहीं हो सकता कि विचारण में विलम्ब करना स्वयं न्याय से इनकार करना है। यह उल्लेखनीय है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में शीघ्रता से विचारण संविधान द्वारा गारण्टीकृत अधिकारों में से एक है। संयुक्त राज्य अमेरिका के छठे संशोधन में यह उपबन्ध है कि—

> "सभी दाण्डिक अभियोजनों में अभियुक्त को शीघ्रता से और सार्वजनिक रूप से विचारण का अधिकार होगा।"

1979(2) eILR(PAT) SC 16

इसी प्रकार यूरोपियन कनवैन्शन ऑन ह्यूमन राइट्स के अनुच्छेद 3 में भी यह उपबन्ध है कि—

> "गिरफ्तार और निरुद्ध किया गया प्रत्येक व्यक्ति युक्तियुक्त समय के भीतर विचारण का या विचारण लम्बित रहने के दौरान उन्मुक्त किए जाने का हकदार होगा।"

हमारे विचार से, यद्यपि हमारे संविधान में शीघ्रता से विचारण को विनिर्दिष्ट रूप से मूल अधिकारों में प्रगणित नहीं किया गया है, तथापि यह इस न्यायालय द्वारा **मेनका गान्धी बनाम भारत संघ**[1] में यथा-निर्वचित अनुच्छेद 21 के व्यापक अर्थ और भाषा में अन्तर्निहित है। हमने उस मामले में अभिनिर्धारित किया है कि अनुच्छेद 21 प्रत्येक व्यक्ति को यह मूल अधिकार प्रदान करता है कि उसे उसके प्राण और दैहिक स्वाधीनता से, विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर, अन्य प्रकार से वंचित नहीं किया जाएगा और उस अनुच्छेद की अपेक्षा के अनुपालन के लिए यही पर्याप्त नहीं है कि विधि द्वारा प्रक्रिया जैसी कोई बात विहित की जानी चाहिए बल्कि प्रक्रिया "युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत" होनी चाहिए। यदि किसी व्यक्ति को ऐसी प्रक्रिया के अधीन उसकी स्वाधीनता से वंचित किया जाता है जो "युक्तियुक्त, उचित या न्यायसंगत" नहीं है तो ऐसा वंचन अनुच्छेद 21 के अधीन उसके मूल अधिकार का अतिक्रमण करने वाला होगा और वह ऐसे मूल अधिकार को प्रवृत्त करने और अपनी उन्मुक्ति प्राप्त करने का हकदार होगा। स्पष्ट रूप से किसी व्यक्ति को उसकी स्वाधीनता से वंचित करने के लिए विधि द्वारा विहित प्रक्रिया तब तक "युक्तियुक्त, उचित या न्यायसंगत" नहीं हो सकती जब तक कि उस प्रक्रिया में ऐसे व्यक्ति के अपराध के अवधारण के लिए शीघ्रता से विचारण सुनिश्चित न हो। ऐसी प्रक्रिया को, जिसमें युक्तियुक्त शीघ्रता से विचारण सुनिश्चित नहीं किया गया है, "युक्तियुक्त, उचित या न्यायसंगत" नहीं समझा जा सकता और वह अनुच्छेद 21 के विरुद्ध होगी। इसलिए, इस बात में कोई सन्देह नहीं हो सकता कि शीघ्रता से विचारण, और शीघ्रता से विचारण से हमारा अभिप्राय युक्तियुक्त रूप से तत्पर विचारण है, अनुच्छेद 21 में विद्यमान प्राण और स्वाधीनता के मूल अधिकार का अभिन्न और आवश्यक अंग है। तथापि, प्रश्न यह है कि उस दशा में परिणाम क्या होगा जब अपराध के अभियुक्त

---

[1] [1979] 1 उम० नि० प० 243=(1978) 2 एस० सी० आर० 621.

1979(2) eILR(PAT) SC 16

व्यक्ति को शीघ्रता से विचारण से वंचित किया जाता है और अनुच्छेद 21 के अधीन उसके मूल अधिकार का अतिक्रमण करके लम्बे समय तक विलम्बित विचारण के परिणामस्वरूप कारावास द्वारा उसे उसकी स्वाधीनता से वंचित किया जाता है। क्या इस आधार पर कि असम्यक् रूप से लम्बी कालावधि के पश्चात् उसका विचारण किया जाना और ऐसे विचारण के पश्चात् उसकी दोषसिद्ध करनी अनुच्छेद 21 के अधीन उसके मूल अधिकार का अतिक्रमण है, वह अपने विरुद्ध लगाए गए आरोप से बिना शर्त मुक्त होकर उन्मोचित किए जाने का हकदार होगा ? इस प्रश्न पर हमें उस समय विचार करना होगा, जब हम स्थगित तारीख को गुणागुण के आधार पर रिट पिटीशन की सुनवाई करेंगे। किन्तु एक बात निश्चित है और हम इस बात के विषय में राज्य सरकार पर जितना भी जोर दें, कम है क्योंकि अब समय आ गया है कि राज्य सरकार न्याय के प्रशासन के विषय में लोगों के प्रति अपने उत्तरदायित्व को समझे और मामले के विचारण के लिए अधिक न्यायालयों की स्थापना करे। हम यह बता देना चाहते हैं कि यदि राज्य सरकार न्याय-प्रशासन की पद्धति में सुधार करना चाहती है और इसे जनसाधारण तक न्याय पहुंचाने का प्रभावशालीपूर्ण माध्यम बनाना चाहती है जिनके लिए न्याय आज अर्थहीन और व्यर्थ की बता बन गया है तो केवल अधिक न्यायालयों की स्थापना करना पर्याप्त नहीं होगा बल्कि राज्य सरकार को उनमें सक्षम न्यायाधीशों की नियुक्ति भी करनी होगी और सक्षम न्यायाधीशों की भर्ती के प्रयोजन के लिए जो कुछ भी आवश्यक है, जैसे उनकी सेवा की शर्तों में सुधार, वह राज्य सरकार को करना होगा।

6. इन्हीं कारणों से हमने तारीख 5 फरवरी, 1979 वाला अपना आदेश किया था। अब हम 19 फरवरी, 1979 को रिट पिटीशन की सुनवाई करेंगे।

न्यायाधिपति पाठक—

7. यह निर्विवाद है कि विचारण किए जाने से पूर्व, विचारणाधीन लोगों का कारावास में अनावश्यक रूप से लम्बी कालावधि के लिए किया गया अवरोध मानवीय स्वाधीनता के सभी सभ्य विचारों के प्रतिकूल है। व्यक्तिगत स्वाधीनता की अर्थपूर्ण संकल्पना के अनुसार, जो सभ्य विधिक व्यवस्था का मूल आधार है, विचारण की प्रतीक्षा कर रहे व्यक्तियों की ओर न्याय प्रशासन का ध्यान जाने से पूर्व कारावास की लम्बी कालावधि स्पष्ट रूप से दुःख की

बात समझी जाएगी। दाण्डिक विधि का मुख्य सिद्धान्त यह है कि कारावास अपराध के निर्णय के अनुसरण में हो सकता है, किन्तु उससे पहले नहीं हो सकता। किन्तु एक अन्य सिद्धान्त इस बात को सुनिश्चित करना वांछनीय बनाता है कि अपराधी पाए जाने पर अभियुक्त अपना दण्ड प्राप्त करने के लिए उपस्थित रहे। दण्ड प्रक्रिया संहिता, पुरानी संहिता और नयी संहिता दोनों में व्यक्ति को अपनी उपस्थिति के लिए जमानत पर या प्रतिभुओं के बिना बन्धपत्र निष्पादित किए जाने पर उन्मोचित किए जाने का उपबन्ध सम्मिलित है। फिर भी, जैसा कि हमारे समक्ष वाले अभिलेख से, प्रथमदृष्टया प्रतीत होता है, बड़ी संख्या में वे व्यक्ति जिनके नाम इण्डियन एक्सप्रैस की 8 जनवरी और 9 जनवरी, 1979 वाली प्रतियों में उल्लिखित हैं, विचारण किए बिना ही अनेक वर्षों से कारावास में रह रहे हैं। यद्यपि बिहार राज्य को किए गए अभिकथनों का उत्तर देने के लिए पर्याप्त अवसर दिया गया था, तथापि बड़े दुर्भाग्य की बात है कि राज्य की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ। बन्दी प्रत्यक्षीकरण पिटीशन पर उत्पन्न होने वाले प्रश्नों के महत्व को देखते हुए हमने राज्य को उपस्थित होने का और अवसर दिया है और तदनुसार हमने पिटीशन की अन्तिम सुनवाई के लिए 19 फरवरी, 1979 की तारीख नियत की है, किन्तु इसके साथ ही हमें इस बात का कोई कारण दिखाई नहीं देता कि इन विचारणाधीन व्यक्तियों को अन्तरिम अनुतोष से वंचित क्यों किया जाए। हमने प्रत्येक विचारणाधीन व्यक्ति की बाबत कही गई बात पर सावधानीपूर्वक विचार कर लेने के पश्चात न्याय के हित में 5 फरवरी, 1979 को वह आदेश देना उचित समझा जिसमें उन व्यक्तियों को जो उस आदेश में उपवर्णित थे, उनके द्वारा स्वीय बन्धपत्र निष्पादित किए जाने पर उन्मोचित किए जाने का निदेश दिया गया था। यह आदेश कुछ असामान्य है, क्योंकि इसमें निदेश दिया गया है कि प्रत्येक मामले में लिया गया स्वीय बन्धपत्र किसी वित्तीय बाध्यता पर आधारित नहीं होना चाहिए। यह शर्त एक साधारण उपाय के रूप में, मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों के प्रेरक दबाव के अधीन, सम्मिलित की गई है।

8. विचारण की प्रतीक्षा कर रहे कैदियों की अपनी उपस्थिति के लिए जमानत पर या प्रतिभुओं के बिना स्वीय बन्धपत्र के निष्पादन पर उन्मुक्ति की न्यायिक शक्ति के प्रयोग के सम्बन्ध में मैं संक्षेप में कुछ कहना चाहूंगा। दण्ड प्रक्रिया संहिता के विद्यमान उपबन्धों में इस सम्बन्ध में व्यापक शक्ति दी गई है और न्यायालयों को ही उसमें विद्यमान अपने विवेकाधिकार

1979(2) eILR(PAT) SC 16

की प्रकृति और मात्रा से अपने को पूर्ण रूप से परिचित कराना है। मेरे विचार से इस शक्ति के यन्त्रवत् प्रयोग का अनुमान करना अब सम्भव नहीं है। अपेक्षित प्रतिभूति की रकम या बन्धपत्र में मांगी गई वित्तीय बाध्यता के विषय में अनेक बातों पर सावधानीपूर्वक विचार किया जाना अपेक्षित है। सम्पूर्ण उद्देश्य केवल यह सुनिश्चित करना है कि विचारणाधीन व्यक्ति विचारण से न भागे और अपने आप को न छुपाए। उन सभी सुसंगत बातों को ध्यान में रखा जाना चाहिए जो इस प्रश्न का अवधारण करने के लिए आवश्यक है[1]। विचारणीय बातों के विषय में संक्षिप्त प्रभाव संयुक्त राज्य अमेरिका के बेल रिफार्म्स ऐक्ट, 1966 के निम्नलिखित उपबन्ध से प्राप्त किया जा सकता है—

> *"यह अवधारित करने के लिए कि उन्मुक्ति की किन शर्तों से उपस्थिति युक्तियुक्त रूप से सुनिश्चित होगी, न्यायिक अधिकारी, उपलभ्य जानकारी के आधार पर, आरोपित अपराध की प्रकृति और परिस्थितियों, अभियुक्त के विरुद्ध साक्ष्य की प्रबलता, अभियुक्त के पारिवारिक बन्धन, नियोजन, वित्तीय साधन, चरित्र और मानसिक स्थिति, समुदाय में उसके निवास की अवधि, दोषसिद्धियों के उसके अभिलेख और न्यायालय की कार्यवाहियों में उपस्थिति के उसके अभिलेख या अभियोजन से बचने के लिए भागने या न्यायालय की कार्यवाही में उपस्थिति होने में असफलता, को ध्यान में रखेगा।"[2]

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

> "In determing which conditions of releases will reasonably assure appearance, the judcial officer shall, on the basis of available information, take into account the nature and circumstances of the offence charged, the weight of the evidence against the accused, the accused's family ties, employment, financial resources, character and mental condition, the length of his residence in the community, his record of convictions, and his record of appearance at court proceedings or of flight to avoid prosecution or failure to appear at court proceedings."

1 दण्ड प्रक्रिया संहिता, धारा 440.

2 18 यू० एस० एस० 3146 (बी).

यह ऐसी बात है जो प्रतिभूति की रकम या वित्तीय बाध्यता का अवधारण करते समय ध्यान में रखी जानी चाहिए। सम्भवतः, यदि ऐसा किया जाता है तो भारत में विचारण से पूर्व उन्मुक्ति की विद्यमान पद्धति की हानियों को टाला जा सकता है या हर हालत में, बहुत कुछ कम किया जा सकता है। **मोती राम और अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाला मामला देखिए।

9. मैं संविधान के अनुच्छेद 21 के अतिलंघन के आधार पर या अन्य आधारों पर विचारणाधीन कैदियों का निरोध जारी रखने की विधिमान्यता और औचित्य पर अन्तिम टिप्पणी या मताभिव्यक्ति करने से बचना वांछनीय समझता हूं। मेरे विचार से बन्दी प्रत्यक्षीकरण पिटीशन के अन्तिम अवधारण के समय ही ऐसा किया जाना चाहिए।

10. इन्हीं कारणों से, मैंने तारीख 5 फरवरी, 1979 वाला आदेश किया था।

11. निर्णय का उपसंहार करते समय, इस बात की ओर ध्यान दिलाया जाना वांछनीय प्रतीत होता है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता में ऐसा स्पष्ट उपबन्ध नहीं है जो समुचित मामलों में विचारणाधीन कैदी को प्रतिभुओं के बिना और किसी वित्तीय बाध्यता के बिना उसके बन्धपत्र के आधार पर उन्मुक्त करने में समर्थ बनाता हो। स्पष्ट उपबन्ध की अत्यन्त आवश्यकता है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि भारतीय कारावासों में इस समय जो विचारणाधीन हजारों कैदी हैं उनमें से अनेक ऐसे हैं जो विचारण से पूर्व अपनी उन्मुक्ति प्राप्त करने में इसलिए असमर्थ हैं कि वे अपनी उपस्थिति के लिए पर्याप्त वित्तीय गारण्टी पेश नहीं कर सकते। जहां उनको कारावास में जारी रखने के लिए एकमात्र कारण यही है, वहां द्वेषजनक भेद-भाव का परिवाद करने का उचित आधार हो सकता है। यह बात उस सांविधानिक पद्धति में और भी अधिक होती है जिसमें सभी नागरिकों के लिए सामाजिक समानता और सामाजिक न्याय का वचन दिया गया है। वित्तीय निर्धनता के कारण स्वाधीनता से वंचित किया जाना ऐसे समाज में बेढंगा तत्व है। अनेक बातों से, जिनका पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, उपस्थिति के लिए पर्याप्त गारण्टी हो जाती है और मुझे ऐसा प्रतीत होता है

---

[1] [1979] 3 उम० नि० प० 278=(1978) 4 एस० सी० सी० 47.

1979(2) eILR(PAT) SC 16

कि यदि कानून में अंतरीय उन्मोचन का समुचित उपबन्ध कर दिया गया होता तो हमारे विधि निर्माताओं द्वारा व्यक्तिगत स्वाधीनता की रक्षा के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाया गया होता।

तदनुसार आदेश दिया गया।

श्या०/श्री०